दशनामसंन्यासः

(श्री आद्यशंकराचार्यकृत "मठाम्नायः" अनुसारेण)

मनुष्य मात्र को जीवन यापन करने केलिये वेद, स्मृति और अनेकों शास्त्रों में चार आश्रम का विधान है। वे हैं– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम। इनमें से "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" इस वेद की विधि के अनुसार त्रैवर्णिक बालक अपने कुल परम्परा के वेद की शाखा का अर्थज्ञान ग्रहण पर्यन्त अध्ययन करने और अन्य शास्त्रों का अध्ययन करने केलिये उपनयन संस्कार के माध्यम से बह्मचर्य आश्रम में प्रवेश करता है (8 से 24 उम्र तक)। उसके बाद वह चाहेगा तो "जाया मे स्यात्, पुत्रं मे स्यात्, पुत्रेणायं लोको जय्यः, विद्यया देवलोकः", इत्यादि विधियों के अनुपालन केलिये विवाह संस्कार के द्वारा गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर सकता है (25 से 50 उम्र तक)। तत्पश्चात् पुत्र आदि पर घर व कर्म आदि सौंप कर पत्नी सहित अथवा पत्नी के विना वन में जाकर तपस्या पूर्वक जीवन यापन करने केलिये वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता है (50 से 75 उम्र तक)। अन्त में विधिवत् विरजाहोम करके संन्यासदीक्षा ग्रहण कर संन्यास आश्रम में प्रवेश करता है (75 उम्र से मरण पर्यन्त)। इस प्रकार तीन आश्रमों का अनुपालन करके संन्यास आश्रम ग्रहण करने को क्रमसंन्यास कहा गया है–"ब्रह्मचर्याद् गृही भवेत्, गृहीभूत्वा वनी भवेत्, वनीभूत्वा संन्यसेत् ।" अथवा जब विवेक वैराग्यादि साधनचतुष्टय से संपन्न हो तब संन्यास आश्रम में प्रवेश कर सकता है, जैसे कि कहा है– ब्रह्मचर्याद्वा गृहाद्वा वनाद्वा संन्यसेत्, यदहरेव विरजेत् तदहरेव परिव्रजेत्।" जैसा भी संन्यास ग्रहण किया हो उस संन्यासी का नाम, कुल, गोत्र आदि बदल जाता है। "संघे शक्तिः कलौ युगे" का अनुसरण करते हुये गुण, आचरण एवं स्थिति के अनुसार जगद्गुरु श्री आद्य शंकराचार्यजी ने समस्त संन्यासियों को दस नामों में विभक्त कर संन्यासी समाज को व्यवस्थित करके संगठित किये थे। वे दस नाम इस प्रकार है–

तीर्थाश्रमवनगिरि – पर्वतारण्यसागराः।
सरस्वतीभारती च पुरीति दशनामिकाः।।1।।

अर्थात् तीर्थ, आश्रम, वन, गिरि, पर्वत, अरण्य, सागर, सरस्वती, भारती और पुरी – ये दस नाम हैं।

किस प्रकार के संन्यासी को "तीर्थ" नाम के अन्तर्गत लिया जाता है सो बता रहे हैं–

त्रिवेणीसंगमे तीर्थे तत्त्वमस्यादिलक्षणे।
स्नायात्तत्त्वार्थभावेन तीर्थनामा स उच्यते।।2।।

तत् त्वम् और असि, इस त्रिवेणी संगम यानि जीव ब्रह्म ऐक्यता रूपी तीर्थ में जो अखण्डार्थ का चिन्तन रूपी स्नान नित्य निरन्तर करता रहता है वह तीर्थ नाम के योग्य संन्यासी है।

किस प्रकार के संन्यासी को "आश्रम" नाम के अन्तर्गत लिया जाता है सो बता रहे हैं–

आश्रमग्रहणो प्रौढः आशापाशविवर्जितः।
यातायातविनिर्मुक्तः एतदाश्रमलक्षणः।।3।।

जो संन्यासी आश्रम (कुटिया आदि) को निवास केलिये स्वीकार कर गमन– आगमन से रहित और सांसारिक विषय भोग रहित होकर विवेकशील है वह आश्रम नाम के योग्य है।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

किस प्रकार के संन्यासी को "वन" नाम के अन्तर्गत लिया जाता है सो बता रहे हैं–

सुरम्यानिर्जने देशे वासं नित्यं करोति यः।
आशापाशविनिर्मुक्तः वन नाम स उच्यते।।4।।

जो संन्यासी स्त्री आदि रहित एकान्त देश यानि अत्सल्प आवागमन युक्त देश अर्थात् साधारण जंगल में नित्य वास करते हुये सांसारिक सकल भोगों से रहित रहता है वह वन नाम के योग्य है।

किस प्रकार के संन्यासी को "अरण्य" नाम के अन्तर्गत लिया जाता है सो बता रहे हैं–

अरण्ये संस्थितो नित्यमानन्दं नन्दने वने।
त्यक्त्वा सर्वमिदं विश्वमरण्यं लक्षणं किल।।5।।

जो संन्यासी स्त्री, पुरुष आदि रहित घोर जंगल में नित्य वास करते हुये संपूर्ण सांसारिक भोगों को त्यागकर नन्दन वन में (अर्थात् आनन्द के अनुभव का स्थान हृदय में) ही अपने स्वरूपभूत आनन्द को अनुभव करता रहता है वह अरण्य नाम के योग्य है। यहाँ वन और अरण्य के फर्क को समझना होगा, वन उस साधारण जंगल को कहते हैं जहां गाँव के पास होने के कारण दिन में थोडे स्त्री और पुरुषों का आवागमन रहता हैं और हिंसक पशु कम होते हैं किन्तु अरण्य वह असाधारण जंगल है जहाँ स्त्री पुरुषों का आवागमन बिल्कुल नहीं होता है और हिंसक पशु स्वतन्त्र व निर्भय होकर विचरते हैं।

किस प्रकार के संन्यासी को "गिरि" नाम के अन्तर्गत लिया जाता है सो बता रहे हैं–

वासो गिरिवरे नित्यं गीताभ्यासे हि तत्परः।
गम्भीराचलबुद्धिश्च गिरि नाम स उच्यते।।6।।

जो संन्यासी छोटे छोटे किन्तु श्रेष्ठ पहाडों पर नित्य वास करते हुये गम्भीर और एकाग्र बुद्धिवाला होकर भगवद्गीता के अभ्यास में तत्पर रहता है वह गिरि नाम के योग्य है।

किस प्रकार के संन्यासी को "पर्वत" नाम के अन्तर्गत लिया जाता है सो बता रहे हैं–

वसेत् पर्वतमूलेषु प्रौढो यो ध्यानतत्परः।
सारासारं विजानाति पर्वतः परिकीर्तितः।।7।।

जो संन्यासी बडे बडे पहाडों के मूलप्रदेश में वास करते हुये संसार के सार और असार को जानकर विवेकी ध्यान के अभ्यास में ही तत्पर रहता है वह पर्वत नाम के योग्य है। यहाँ गिरि और पर्वत कक फर्क को समझना होगा, गिरि उन छोटे छोटे पहाडों को कहते हैं जिनपर आसानी से चढा जा सके और पर्वत उन बडे बडे पहाडों को कहते हैं जिन पर सब को चढना आसान नहीं होता जैसे कि हिमालय आदि।

किस प्रकार के संन्यासी को "सागर" नाम के अन्तर्गत लिया जाता है सो बता रहे हैं–

वसेत्सागर–गम्भीरे धनरत्नपरिग्रहः।
मर्यादाश्चालंघेत सागरः परिकीर्तितः।।8।।

जो संन्यासी उपनिषद् रूपी सागर का गहराई में उतरकर महावाक्य रूपी रत्नों को संग्रह करके संन्यास आश्रम के मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करता वह सागर नाम के योग्य है।

किस प्रकार के संन्यासी को "सरस्वती" नाम के अन्तर्गत लिया जाता है सो बता रहे हैं–

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM

स्वरज्ञानवशो नित्यं स्वरवादी कवीश्वरः।
संसारसागरे सारामिज्ञ यः स सरस्वती।।9।।

जो संन्यासी अद्वैतज्ञान कक चिन्तन में आरूढ रहते हुये नित्य अद्वैत का ही कथन करनेवाला होकर अत्यन्त विवेकशील होने से संसार रूपी सागर का सम्यक् परीक्षण करके उसके वास्तविक सार को जानता है, वह सरस्वती नाम के योग्य है।

किस प्रकार के संन्यासी को "भारती" नाम के अन्तर्गत लिया जाता है सो बता रहे हैं–

विद्याभारेण संपूर्णः सर्वभारं परित्यजेत्।
दुःखभारं न जानाति भारती परिकीर्तितः।।10।।

जो संन्यासी आत्मज्ञान रूपी भार से पूर्णरूपेण युक्त होने के कारण संसार रूपी भार को त्यागकर किसी भी प्रकार कक दुःख से विचलित न होता हो वह भारती नाम के योग्य है।

किस प्रकार के संन्यासी को "पुरी" नाम के अन्तर्गत लिया जाता है सो बता रहे हैं–

ज्ञानतत्त्वेन संपूर्णः पूर्णतत्त्वे पदे स्थिते।
परब्रह्मरतो नित्यं पुरी नाम स उच्यते।।11।।

ज्ञान के वास्तविक स्वरूप से पूर्णरूपेण युक्त होकर जो संन्यासी अपनी पूर्ण रूपता का अनुभव करते हुये नित्य ही परब्रह्ममें आरूढ रहता है वह पुरी नाम के योग्य है।

यद्यपि जगद्गुरु श्री आद्य शंकराचार्यजी ने जब स्वयं के द्वारा लिखित मठाम्नाय के अनुसार अपने काल में उक्त लक्षणों से युक्त संन्यासियों को उक्त नामों से अलंकृत किया था परन्तु इस प्रकार लक्षण के अनुसार नाम से विभूषित करने की प्रक्रिया कब नष्ट हो गयी, पता ही नहीं चला तथापि आज कल इन नामों का प्रयोग केवल गुरु के नाम पर आधारित रह गया है और गुण, आचरण या स्थिति का नामों से कोई संबंध नहीं है। खेद की बात यह है कि जगद्गुरु श्री आद्य शंकराचार्यजी के "यथा नाम तथा गुण" सिद्धान्त की उपेक्षा क्यों की गयी? यह समर्थ विद्वज्जन को सोचना होगा और वर्तमान में प्रचलित विकृत, अवैध व निर्मूल 'नाम' करण प्रक्रिया को हटाकर प्राचीन पद्धति को पुनः स्थापित करना होगा। यही जगद्गुरु श्री आद्य शंकराचार्यजी के प्रति एवं प्राचीन संन्यास पद्धति के प्रति अपने कर्तव्य और दायित्व का निर्वहन होगा।

Created by demo-version of Universal Document Converter. Full version doesn't add this stamp.
WWW.PRINT-DRIVER.COM